संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

वर्ष : १२८ • संयुक्तांक : २४-२५ • १५ एवं २२ जून, २०२३ (गुरुवार) आषाढ़ शुक्लपक्ष चतुर्थी सम्वत् २०८० • दयानन्दाब्द १९६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१९६०८५३१२४

विश्व योग दिवस पर विशेष

"योग मनुष्य जीवन के कल्याण की एक सुखद यात्रा"

योग द्वारा ही सुख-शांति सम्भव

–देवेन्द्रपाल वर्मा

हमारे ऋषियों ने योग को मनुष्य के जीवन के कल्याण का मुख्य आधार माना है प्रत्येक मनुष्य समस्त दुःखों से मुक्त होकर स्थाई रूप से दुःख रहित आनंद को प्राप्त करना चाहता है। योग के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना मनुष्य पूर्ण आनंद को नहीं प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में योग की जगह अयोग सिखाया जाता है। योग के सहयोगी शब्द योगासन, योग क्रिया, योग मुद्रा आदि है। मूलतः योग शब्द जोड़ने के अर्थ में लिया जाता है। आसन के रूप में किया गया योग स्वास्थ्य व शरीर के लिए हितकारी होता है, एक तरफ मनुष्य योगासन से शरीर सक्रिय कर लेता है। तो दूसरी तरफ स्वास्थ्य विरोधी आचरण कर सब चौपट कर देता है। जिस प्रकार व्यायाम आसन प्राणायाम आदि से तंत्र को दृढ़ता व सक्रियता प्राप्त होती है, उसी प्रकार योग साधना से परमेश्वर से मिलना होता है। योग परमेश्वर तक पहुंचने की उपाय रूपी क्रिया है। महर्षि दयानंद सरस्वती जी ऋग्वेद भाष्य भूमिका के उपासना विषय में यजुर्वेद अध्याय ११ मंत्र १ को उद्घृत करते हुए लिखते हैं-

युंजानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियम्।
अग्ने ज्योंतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्।।

अर्थात योग को करने वाले मनुष्य तत्व अर्थात ब्रह्म ज्ञान के लिए जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वह परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत धारण करते हैं। पृथ्वी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है।

योग केवल प्रातः या सायं की जाने वाली एक क्रिया नहीं है यह तो मनुष्य के जीवन की एक सुखद यात्रा है, जिसका लक्ष्य परमेश्वर की प्राप्ति है। वेदान्त दर्शन में लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति तक साधना करने को कहा गया है--"आ प्रायणातत्रपिवहि दृष्टम्"

योग साधना से मनुष्य जन्म मृत्यु से छूटकर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है योग संसार से ऊपर मुक्ति तक जाने का मार्ग है देखा जाए तो यह संसार योग का विरोधी नहीं बल्कि यह तो योग सिद्ध करने की एक प्रयोगशाला के समान है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने योग को जीवन की यात्रा कहा है जिसमें कभी तीव्र गति होती है कभी मध्यम और कभी मंद हो

जाती है यह सब उपासना काल के अंतर का एक हिस्सा है।

योग को सिद्ध करने के लिए योग शास्त्र के सूत्र का उपासना विषय में उल्लेख करते हैं "योगः चित वृत्ति निरोधः" अर्थात चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाकर शुभ गुणों में स्थित करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फंस के उससे दूर हो जाना।

योग एवं प्राण एक दूसरे के पूरक हैं प्राणों का संयमित होना ही योग है योग से प्राण बलशाली होते हैं योगी प्राण विद्या के महत्व को भलीभांति जानकर अपनी उपासना को सफल बना सकता है जैसा कि चारों वेदों में प्राणों का विशेष उल्लेख अनेक अर्थों में किया गया है। योग साधक अपने प्राणों को संयुक्त करके ऊर्ध्व गति को प्राप्त करता है।

आज इन विकट सामाजिक परिस्थितियों में वैदिक धर्म संस्कृति सभ्यता परंपराएं आदि लुप्त होती जा रही है। इसके विपरीत केवल भोग वादी एवं अर्थ वादी परंपराओं का अधिक प्रचार-प्रसार हो रहा है जिसके कारण ब्रह्म विद्या दुर्लभ हो गई है। स्थाई सुख शांति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य भटक रहा है यहां तक समस्त भूमंडल का स्वरूप भी बदल डालने पर तुला है। फिर भी दुःखों से निवृत्त नहीं हो पा रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक रोगों का निदान इस भौतिक विज्ञान से कभी संभव नहीं हो सकता। इसका समाधान केवल अध्यात्म विद्या के द्वारा ही हो सकता है, जो हमारे ऋषियों की प्राचीन पद्धति योगविद्या है।

यजुर्वेद ३१/१८ में स्पष्ट कहा गया है कि--

मेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम् तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

भाव यह है की एक विद्वान परमात्मा को जानकर दूसरों को यह बतलावे कि मैं उस महान गुणों से युक्त पुरुष परमात्मा को जानता हूँ जो ज्ञान से परिपूर्ण और अज्ञान से पृथक है उस परमात्मा को जानकर ही मनुष्य जन्म मृत्यु के दुःख से छूट सकता है और कोई दूसरा मार्ग मुक्ति का नहीं है। इसी वैदिक योग को आदि सृष्टि से योगी जन बतलाते आये हैं।

विश्व योग दिवस के अवसर पर प्रदेश के समस्त आर्य बंधुओं को हार्दिक बधाई देता हूं समस्त मनुष्यों के प्रेरणा पुंज योगी ऋषिवर दयानंद की अमूल्य शिक्षायें पथ प्रदर्शक के रूप में हमारी धरोहर हैं। •••

वेदामृतम्

त्वं धियं मनोयुजं, सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा, दिव्या च सोम पुष्यसि।।

ऋग् ९.१००.३

हे सोम परमेश्वर ! तुम्हारे अन्दर अपूर्व सर्जनात्मक शक्ति है, तुम सम्पूर्ण चराचर जगत् का ही सर्जन करनेवाले हो । अतः मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम मेरे अन्दर मनः संयुक्त 'धी' का सर्जन करो। वैदिक 'धी' में बुद्धि और क्रिया-शक्ति दोनों सम्मिलित हैं। मन का कार्य संकल्प और विचार करना, तथा बुद्धि का कार्य अध्यवसाय या निश्चय करना है। हमारी बुद्धि मनःसंयुक्त हो, अर्थात् हम जो कुछ निश्चय करें वह मन से सोच-विचार के उपरान्त ही करें, क्योंकि बिना विचारे सहसा किया गया निश्चय प्रायः भ्रान्त होता है। इसी प्रकार हमारी किया भी मनःसंयुक्त हो, अर्थात् हम कर्म भी विचारपूर्वक ही करें। जैसे विद्युत् मेघ से वृष्टि उत्पन्न करती है, वैसे ही तुम हमारे अन्दर मनः संयुक्त 'धी' को उत्पन्न करो, 'धी' की वर्षा करो। उस 'धी' की वृष्टि में संस्नात होकर हम अपने अन्दर प्रबोध, चैतन्य, स्फूर्ति, प्रफुल्लता को अनुभव करें।

हे सोम प्रभु ! तुम ऐश्वर्यशाली हो ! तुम मुझे पार्थिव और दिव्य दोनों प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करो। पार्थिव ऐश्वर्यो में हम तुमसे धन-धान्य, पुत्र, पशु, दुग्ध, घृत, वस्त्र, उत्तम गृह, भूमि, खेत, बाग-बगीचे आदि की समृद्धि चाहते हैं। वेद ने गृह-समृद्धि का चित्रांकन करते हुए कहा है कि हमारी चिरकाल तक स्थिर खड़ी रहनेवाली शाला में अश्व हो, गौएँ हो, सुनृता हो, अन्न हो, घृत हो, वत्स हो, कुमार हों, तरुण हो, दूध से भरे घड़े हों, दही के मटके हों। हमारे घरों में तुम ऐसा ही चित्र ला दो। हम समृद्धि-पूर्वक इस प्यारे लोक में हँसते-खेलते, नाचते-गाते दीर्घ जीवन पाते हुए आगे बढ़े । साथ में तुम हमें देवी सम्पत् भी प्रदान करो, जिसे भगवद्गीता में अभय, सत्त्व-संशुद्धि, ज्ञानयोग-व्यवस्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, भूतदया, अलोलुपत्व, मार्दव, हो, अचापल्य, तेज, क्षमा, घृति, शौच, अद्रोह, अतिमानिता का अभाव, इन नामों से परिगणित किया गया है। इन पार्थिव और दिव्य उभयविध ऐश्वर्यो को हमें प्रदान करके तुम सदा इन्हें परिपुष्ट करते रहो, जिससे कभी ये क्षीण न हों, प्रत्युत अधिकाधिक बढ़ते ही जाएँ।

आर्य समाज जातिवाद, छुआछूत, पर्दा प्रथा, फलित ज्योतिष व पंथवाद आदि के विरुद्ध, सुधार हेतु कटिबद्ध

–देवेंद्रपाल वर्मा

आर्य समाज गुंधनी जनपद बदायूं के १०९वें वार्षिकोत्सव व यज्ञ महोत्सव में दिनांक १८ जून २०२३ को संबोधित करते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा उ०प्र० के यशस्वी प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा जी ने कहा कि- "आर्य समाज जातिवाद, छुआछूत, पर्दाप्रथा, फलित ज्योतिष, जड़ पूजा, अवतार वाद व पंथवाद के सुधार हेतु कटिबद्ध है। वह विज्ञान का समर्थक एवं मनुष्य धर्म रूपी मानवता का पोषक है। आर्य समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य महर्षि दयानंद का सामाजिक बुराइयों को जड़ से समाप्त कर वेदानुकूल जीवन जीना था। यह बड़े सौभाग्य व गर्व का विषय है कि आगामी वर्ष २०२४ तक हम सभी आर्यजन महर्षि की २००वीं जयंती के साक्षात गवाह हैं। मैं सभी आर्यों का आवाहन करता हूं कि वह आर्य समाज के प्रचार प्रसार के लिए जनसाधारण से संपर्क कर उन्हें आर्य समाज व वेदोक्त विषय से अवगत करा कर कट्टर मतपंथों के घिनौने रूप से परिचित कराएं जो आज समय की मांग है।

सभा प्रधान ने उत्तर प्रदेश सरकार से उत्तर प्रदेश में पूर्ण शराबबंदी की मांग करते हुए नौजवान पीढ़ी को शराब की लत से दूर रहने की अपील की।

समारोह को श्री वी.एल. वर्मा-केंद्रीय मंत्री, श्री डी.पी. यादव पूर्व मंत्री, श्री नरेंद्र सिंह उप जिलाधिकारी, श्रीमती ज्ञान देवी सागर चेयरमैन, श्री ओमप्रकाश सागर कोतवाल, बिल्सी, इं० रोबिन सिंह-दिल्ली, आचार्य वीरेंद्र शास्त्री आदि ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम के आयोजक निर्देशक आचार्य संजीव रूप जी थे।

यज्ञ महोत्सव में सर्वश्री पंकज सक्सेना, अवनीश चंद्र गोयल, राम अवतार गोयल, अमरपाल सिंह, किशन पाल आर्य, सुखबीर सिंह, जयप्रकाश, राकेश आर्य, अरविंद सक्सेना, सत्यम आर्य, गोपाल आर्य, विशेष आर्य, गौतम आर्य, श्रीमती शशि आर्या सहित अनेक गणमान्य व सैकड़ों ग्रामवासी आदि ने गरिमामई उपस्थिति के साथ कार्यक्रम को सफल बनाया।

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

योगेश्वर श्री कृष्ण

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण संसार की महान विभूति थे। वह योगेश्वर के साथ-साथ विज्ञान वेत्ता व वेद अध्येता थे श्रीकृष्ण संसार के पहले ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने कर्म को योग से जोड़कर मनुष्य को जीना सिखाया वह आध्यात्मिक जगत के सर्वश्रेष्ठ उपदेष्टा थे। जिससे उनकी गिनती योगेश्वरों में होती है। श्री कृष्ण आज भी करोड़ों लोगों के प्रेरक श्रद्धेय व निष्ठा के पात्र हैं। वह उच्च राजनीतिज्ञ धर्म उपदेशक तथा धर्म संस्थापक थे। कृष्ण योगी तो थे ही अध्यात्म साधना के साधक थे मोह में फंसे अर्जुन को कृष्ण सावधान करते हैं

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनं।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। भीष्म पर्व।। ३/५७

अर्थात कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, उसके फलों में कदापि नहीं, अतः तू कर्मों के फल का हेतु मत बन, फल प्राप्ति के लिए कर्म मत कर और तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति ना हो। अर्थात कर्म रहित कर्म शून्य भी मत बन।

आगे अर्जुन से समत्व कर्म के विषय में श्री कृष्ण कहते हैं--

तस्माद ज्ञानसम्भूतं हृदस्थम् ज्ञानासिनाऽऽत्मनः।
छित्त्वैनम् संशयम् योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। भीष्म पर्व ३/६२।।

हे भरतवंशी अर्जुन तू हृदय में स्थित इस अज्ञान जनित अपने संशय को विवेक रूपी तलवार के द्वारा काटकर समत्वरूपी कर्म योग का सहारा लेकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।

श्री कृष्ण के वचनों का ही प्रभाव था जो मोह से निकल अर्जुन कह उठा--

नस्टो मोहः स्मृति र्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्यो वचनम् तव।। भीष्मपर्व ३/६६।।

हे अच्युत आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया, मेरी भ्रांति दूर हो गई, मुझे अपने क्षत्रिय धर्म का स्मरण हो गया। अब मैं संशय रहित होकर स्थित हूं अतः आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

योग सिद्धि के विषय में श्री कृष्ण कहते हैं-

तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति। गीता ४/३८

सम्यक ज्ञान को मनुष्य उसी समय नहीं प्राप्त कर सकता किंतु समय पाकर योग सिद्धि द्वारा उसे पाता है वह समय कितना लगेगा यह आगे स्पष्ट करते हैं-

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संसिद्धकिल्बिषः।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति पराम् गतिम्।। ६/४५(गीता)

अर्थात प्रयत्न पूर्वक आगे बढ़ता हुआ योगी दोष रहित होकर अनेक जन्मों में परम गति को प्राप्त करता है।

वाह प्रयत्न कैसा हो यह भी स्पष्ट कर दिया-

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोस्य योगों भवति दुःखहा।। गीता ६/१७

अर्थात आहार-विहार, सोना जागना आदि सब क्रियाओं को नियंत्रित करने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

योगेश्वर कृष्ण संध्या उपासना व अग्निहोत्र आदि में आलस्य नहीं करते थे। दुर्योधन से वार्ता हेतु जाते समय प्रातः सायं संध्या व अग्निहोत्र करना वह नहीं भूले थे।

प्रातरूत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमान्हिकम्।
ब्राह्मणैरभ्युज्ञातः प्रययो नगरम् प्रति।। उद्योग पर्व ५/८/७/१

प्रातःकाल उठकर कृष्ण ने संध्या हवन आदि सब क्रियाएं की और पुनः ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर नगर की ओर प्रस्थान किया।

कृष्ण के चरित्र को लेकर लोग अनेक प्रकार के लांछन उनके ऊपर लगाते हैं जो उचित नहीं है। महर्षि दयानंद इसका स्पष्ट विरोध करते हुए लिखते हैं "कि देखो श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के समान है, जिसमें अधर्म का आचरण अर्थात श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यंत बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। परंतु इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। इसको पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर अन्य मत वाले लोग श्री कृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं, जो यह भागवत ना होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निंदा क्यों कर होती।

श्री कृष्ण का राष्ट्रवाद लोक कल्याण सर्वहित अराजकता अन्याय तथा शोषण को समाप्त कर धर्म की स्थापना के लिए था। आज के वर्तमान समय में कृष्ण जी की नीतियों व विचार धारा की नितांत आवश्यकता है कृष्ण जैसा कर्म योगी इस धरा पर दूसरा नहीं हो सकता हम सब को उसके जीवन से प्रेरणा लेकर सीख लेनी चाहिये।

-सम्पादक

निर्वाचन

आर्य समाज राजाजीपुरम्, लखनऊ

प्रधान	::	श्री निरंजन सिंह
मंत्री	::	श्री राजीव बतरा
कोषाध्यक्ष	::	श्री नरेश बाबू सक्सेना

आर्य समाज बिसवाँ, सीतापुर

प्रधान	::	श्री रमापति रस्तोगी
मंत्री	::	श्री अजीत आर्य
कोषाध्यक्ष	::	श्री कैलाश पति रस्तोगी

गतांक से आगे.........

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इञ्जील

७७-हे अविश्वासी और हठीले लोगो।। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ यदि तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास होय तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि यहाँ से वहां चला जा, वह जायेगा और कोई काम तुम से असाध्य नहीं होगा।।

-इं० म० प० १७। आ० १७।। २०।।

(समीक्षक) अब जो ईसाई लोग उपदेश करते फिरते हैं कि 'आओ हमारे मत में क्षमा कराओ मुक्ति पाओ' आदि, वह सब मिथ्या है। क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने विश्वास जमाने और पवित्र करने का सामर्थ्य होता तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप, विश्वासी, पवित्र क्यों न कर देता ? जो ईसा के साथ-साथ घूमते थे जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहां है? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा। जब ईसा के चेले राई भर विश्वास से रहित थे और उन्हीं ने यह इंजील पुस्तक बनाई है तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्य का काम नहीं। और इसी से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का यह वचन सच्चा है तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान विश्वास अर्थात् ईमान नहीं है जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है तो उससे कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हटा देवें। यदि उनके हटाने से हट जाये तो भी पूरा विश्वास नहीं किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास, ईमान अर्थात् धर्म का ईसाइयों में नहीं है। यदि कोई कहे कि यहां अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तों को चंगा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध करके सचेत कुशल किया होगा। जो ऐसा मानें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता? इसलिए असम्भव बात कहना ईसा की अज्ञानता का प्रकाश करता है। भला ! जो कुछ भी ईसा में विद्या होती तो ऐसी अटाटूट जंगलीपन की बात क्यों कह देता ? तथापि **'यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते'** जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो उस देश में एरण्ड का वृक्ष ही सब से बड़ा और अच्छा गिना जाता है। वैसे महाजंगली देश में ईसा का भी होना ठीक था। पर आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है।। ७७।।

७८- मैं तुम्हें सच कहता हूँ जो तुम मन न फिराओ और बालकों के समान न हो जाओ तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने न पाओगे।।

-इ० म० प० १८। आ० ३।।

(समीक्षक) जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है तो कोई किसी का पाप पुण्य कभी नहीं ले सकता ऐसा सिद्ध होता है। और बालक के समान होने के लेख से विदित होता है कि ईसा की बातें विद्या और सृष्टिक्रम से बहुत सी विरुद्ध थीं और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मान लें, पूछे गाछे कुछ भी नहीं, आंख मीच के मान लेवें। बहुत से ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है। नहीं तो ऐसी युक्ति, विद्या से विरुद्ध बातें क्यों मानते ? और यह भी सिद्ध हुआ जो ईसा आप विद्याहीन बालबुद्धि न होता तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता ? क्योंकि जो जैसा होता है वह दूसरे को भी अपने सदृश बनाना चाहता ही है।। ७८।।

७९- मैं तुम से सच कहता हूँ, धनवान् को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा।। फिर भी मैं तुम से कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से ऊँट का सूई के नाके में से जाना सहज है।।

- ई० म० प० १९। आ० २३ २४।।

(समीक्षक) इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उस की प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे, इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा हो तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है। पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना केवल अविद्या की बात है। और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे? और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे ? भला तनिक सा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं।।७९

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

नास्तिक तथा जैन मत

(आत्माराम जी पूज लुधियाना से पत्र-व्यवहार द्वारा प्रश्नोत्तर- नवम्बर, १८८० से जनवरी, १८८१)

नोट-जैनियों के आचार्य पूज्यवर आत्माराम जी पंचायत सरायोगियां, लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गुजरांवाला ने स्वामी जी महाराज से पत्र द्वारा कुछ प्रश्न पूछे थे, उनके उत्तर स्वामी जी ने अपने पत्र मिति ६ नवम्बर, सन् १८८० मंत्री आर्यसमाज देहरादून के द्वारा आर्यसमाज गुजरांवाला में भिजवा दिये जिन्हें १३ नवम्बर, सन् १८८० को प्रधान आर्यसमाज गुजरांवाला ने प्रश्नकर्ताओं के पास भेज दिया। उपप्रधान आर्यसमाज ने प्रश्नकर्ताओं को निम्नलिखित पत्र भी अपनी ओर से लिखा-

"श्रीयुत पंडित आत्माराम जी और ला० ठाकुरदास जी को नमस्ते ! देहरादून से यहां एक पत्र उन प्रश्नों के उत्तर का जो श्राप सज्जनों ने स्वामी जी से किये थे, इस प्रयोजन से पहुंचा था कि इसकी एक प्रतिलिपि आपके पास भेजी जावे, सो प्रतिलिपि आपके समीप भेजी जाती है और यह भी प्रकट किया जाता है कि इसकी एक प्रतिलिपि स्मामी जी की आज्ञानुसार लुधियाना के श्रावक सज्जनों के पास भी भेजी गई है। मुंशी प्रभुदयाल जी से आपको विदित हुआ होगा।"

(मिति १३ नवम्बर, सन् १८८० नारायणकृष्ण उपप्रधान आर्यसमाज, गूजरावाला।)

आत्मिक बल

–स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

प्रिय पाठकगण! आजकल हमारे बहुत-से भाई किसी कार्य का आरम्भ करके उसे मध्य में ही छोड़ देते दिखलाई पड़ते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनमें उस काम के करने की शक्ति न थी। आप कहेंगे कि जब वे शिक्षित, निश्चिन्त, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हैं तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि उनमें उस कार्य करने की शक्ति न थी? हमने जहाँ तक परीक्षा की है, उससे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक कार्य का होना आत्मिक बल के अधीन है। यद्यपि शारीरिक बल और धन-बल भी सांसारिक कार्यों को करने के लिए आवश्यक हैं, परन्तु आत्मिक बल होने पर ये सब वस्तुएँ स्वयमेव जुट जाती हैं, परन्तु इनके होने पर आत्मिक बल भी हो-यह आवश्यक नहीं, और न ही इनसे आत्मिक बल उत्पन्न हो सकता है।

अब प्रश्न यह होता है कि आत्मिक बल है क्या जिसके होने से समस्त कार्य पूर्णरूप से हो सकते हैं और जिसके न होने से अनेक आवश्यक वस्तुओं की विद्यमानता में भी कार्य नहीं हो सकता? इसका उत्तर यह है कि ज्ञान और प्रयत्नवाली शक्ति को आत्मा कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न उसके गुण कहलाते हैं। इन गुणों के बढ़ने का नाम बल का बढ़ना कहलाता है। बस, आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की निर्बलता आत्मिक निर्बलता है और ज्ञान व प्रयत्न की वृद्धि ही आत्मिक बल है।

हमारे बहुत-से मित्र कह देंगे कि ''न्यायशास्त्र'' में जीवात्मा के ये लक्षण लिखे हैं-सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। तुमने पहले चार क्यों छोड़ दिये, और अन्त के दो क्यों रख लिये? इसका उत्तर यह है कि पहले चार इसलिए छोड़ दिये, क्योंकि वे शरीर और आत्मा के गुण हैं। उदाहरणसहित देखिए-कोई मनुष्य हाथ से लकड़ी को कुल्हाड़ी की शक्ति से काटता है। यह लकड़ी काटना कुल्हाड़ी से मिले हुए हाथ का कार्य है, केवल हाथ का नहीं, क्योंकि न तो बिना कुल्हाड़ी के हाथ काट सकता है और न ही बिना हाथ की सहायता के कुल्हाड़ी काट सकती है। जब दोनों में से पृथक्-पृथक् कोई भी काटने की शक्ति नहीं रखता और मिलकर बराबर काट सकते हैं तो वह मिले हुओं का धर्म है, एक का नहीं। इसी प्रकार सुख-दुःख और इच्छा-द्वेष सूक्ष्मशरीर के साथ आत्मा को प्रतीत होते हैं, न अकेले आत्मा को प्रतीत होते हैं और न अकेले शरीर को। यदि इन्हें अकेले आत्मा के गुण मान लिया जाए तो सुषुप्ति दशा में भी इनका अनुभव होना चाहिए, परन्तु सुषुप्ति की दशा में किसी को भी सुख-दुःख इच्छा-द्वेष विदित नहीं होते। इससे निश्चय होता है कि ये आत्मा के धर्म नहीं। यदि इन्हें अकेले शरीर का धर्म मान लें तो ये मृतक में भी होने चाहिए, परन्तु मृतक में ये गुण होते नहीं। इससे ज्ञात होता है कि ये गुण आत्मा और शरीर के मिलने पर उत्पन्न होते हैं।

प्रिय पाठक महाशयो! हमारे अनेक मित्र कहेंगे कि सुषुप्ति-काल में आत्मा में कोई ज्ञान नहीं रहता, इसी कारण उस समय सुख-दुःख आदि विदित नहीं होते, अन्यथा आत्मा में ये गुण सदैव रहते हैं, परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा किसी काल में भी ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता। किसी द्रव्य के गुण उसकी विद्यमानता में उसे छोड़कर जा ही नहीं सकते, फिर किस प्रकार माना जा सकता है कि द्रव्य (आत्मा) के विद्यमान होने पर उनके गुण ज्ञान और प्रयत्न उससे पृथक् हो जाएँ? जब प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है तो द्रव्य अस्तित्व की स्थिरता के लिए गुणों का होना आवश्यक है।

परन्तु बहुत से मित्र यह कहेंगे कि फिर क्या कारण है कि सुषुप्ति की दशा में ज्ञान प्रतीत नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि ज्ञान दो प्रकार का है-एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक/स्वाभाविक ज्ञान वह है जो बिना किसी इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध के बना रहता है, जैसे अपने होने का ज्ञान। दूसरा ज्ञान पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, जैसे-रूप-ज्ञान के लिए रूपवत् वस्तु और रूप के ग्रहण करने वाली इन्द्रिय अर्थात् चक्षु और रूप के प्रकाश करने की शक्ति जैसे सूर्य, दीपक इत्यादि का होना आवश्यक है। आत्मा ज्ञानी होने पर भी बिना इन तीन पदार्थ के रूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। शब्द-ज्ञान के लिए काल, आकाश और शब्द का होना आवश्यक है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान बिना साधनों के नहीं हो सकता, परन्तु अपने ज्ञान अथवा आन्तरिक पदार्थों के जानने के लिए किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं।

प्यारे पाठको! ऊपर के दृष्टान्तों से आपने समझ लिया होगा कि जिन पदार्थों के लिए साधनो की आवश्यकता है वे बाह्य पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान बिना साधनों के होता है वह उसका अपना गुण है। अब सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष का होना बिना मन की वृत्तियों के संयोग के नहीं हो सकता। जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं तो इच्छा उत्पन्न होती है। जब उसे बुरा समझते हैं तो उसमें द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जिस पदार्थ का संयोग आत्मा के अनुकूल प्रतीत होता है, उसे सुख मानते हैं। जो आत्मा के प्रतिकूल प्रतीत होता है, उसे दुःख कहते हैं। इसलिए ये गुण मन के कारण उत्पन्न होते हैं। सुषुप्तिकाल में जब इन्द्रिय, मन और बुद्धि अपना-अपना काम छोड़ देते हैं तब सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष सर्वथा नहीं रहते। केवल ज्ञान और प्रयत्न जो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, वे शेष रह जाते हैं। अब यह शङ्का होगी कि सुषुप्ति काल में आत्मा को किस वस्तु का ज्ञान रहता है और वह किसके लिए प्रयत्न करता है? इसका उत्तर यह है कि सुषुप्तिकाल में आत्मा को अपने होने का ज्ञान होता है और वह शरीर की उस न्यूनता को, जो जाग्रदवस्था के दुःखों से उत्पन्न हो गई है, पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है।

हमारे बहुत-से मित्र यह कहेंगे कि जब गौतम ऋषि ने अपने दर्शन में जीवात्मा के छह गुण माने हैं और महर्षि कणाद ने इससे भी अधिक, तो तुम्हारा कहना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। इसका समाधान यह है कि हमारे ऐसे मित्रों को महात्मा गौतम का दूसरा सूत्र भी पढ़ लेना चाहिए, जिसमें उन्होंने इन चारों गुणों को मिथ्याज्ञान की सन्तान में बतलाया है। इसलिए ये चार गुण जीवात्मा के नहीं हो सकते। प्रिय पाठको! महात्मा कणादजी ने अपने वैशेषिक शास्त्र में आत्मसंयोग से ही कर्म माना है। बिना आत्मा के कर्म हो ही नहीं सकता। उन्होंने लिखा है-

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ।। - बै० ५।१।१

जब आत्मा का हाथ के साथ सम्बन्ध होता है तभी हाथ में कर्म, अर्थात् कार्य करने की शक्ति होती है, बिना आत्मा के संयोग के नहीं।

तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म॥ -बै० ५।१।२

और जब आत्मा से युक्त हाथ मूसल से सम्बन्ध जोड़ता है तो मूसल में कार्य की शक्ति आ जाती है। यहाँ हाथ से तात्पर्य सारे शरीर के अङ्ग हैं और मूसल से सर्व प्रकार के बाहरी शस्त्र, अर्थात् साधन, जिनसे मनुष्य कार्य लेते हैं, समझने चाहिएँ।

मित्रवर्ग! जब यह ज्ञात हो गया कि आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न दो गुण हैं और इन दोनों की वृद्धि का नाम आत्मिक बल और घटने का नाम आत्मिक बल की हानि है। तब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इनके बढ़ने और घटने का कारण क्या है? इसका उत्तर यह है कि संसार में हमें एक नियम विदित होता है कि जहाँ जिसके अनुकूल पदार्थ मिलते हैं वहाँ उसकी उन्नति होती है, जहाँ विरुद्ध पदार्थ मिलते हैं वहाँ हानि, जैसे-वर्षा ऋतु में जब चारों ओर पानी बरस रहा हो और ठण्डी पवन के झोंके वेग से चल रहे हों, उस समय यदि आप एक दियासलाई की तीली जलाएँगे तो कठिनता से जलेगी, परन्तु यदि उसे ग्रीष्म ऋतु में जब लू अर्थात् गर्म वायु बह रही हो जलाना चाहो, तो बड़ी सरलता से जल जाएगी। दूसरे, यदि रोगी को जिसे गर्मी के कारण ज्वर आता है, गर्म ओषधि देते चले जावें तो गर्मी के बढ़ने से रोग बढ़ता जाएगा? यदि ठण्डी ओषधियाँ दी जाएँ तो रोग निवृत्त हो जाएगा। इससे प्रकट है कि अनुकूल पदार्थों के संयोग से उन्नति और विरुद्ध पदार्थों के संयोग से हानि होती है।

अब जानना चाहिए कि कौन-कौन-से पदार्थ हैं जो आत्मा को मिलते हैं? उनमें कौन-कौन अनुकूल और कौन-सी वस्तु प्रतिकूल है? इसपर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे दो ही पदार्थ हैं-एक प्रकृति, दूसरा परमेश्वर, जिनसे आत्मा का सम्बन्ध होता है। जीव चैतन्य और शरीर के सम्बन्ध से गतिवाला है, प्रकृति परिवर्तनशील और ज्ञानशून्य है, परमेश्वर ज्ञानस्वरूप, स्वाभाविक क्रियावान् और आनन्दस्वरूप है।

प्रिय पाठक! जब प्रकृति ज्ञानशून्य तथा क्रियारहित है और जीव ज्ञानसहित और क्रियावान् है तो जब वह प्रकृति से अपना सम्बन्ध करेगा तो उससे ज्ञान और क्रिया की उन्नति तो होगी नहीं, हाँ, प्रकृति के गुण उसमें आ जाएँगे। यद्यपि प्रकृति में जीव के सम्बन्ध से क्रिया उत्पन्न हो जाएगी, और संयोग से ज्ञान का भी कुछ अंश प्रतीत होगा, परन्तु जीव के ये दोनों गुण न्यून होते चले जाएँगे। जितनी प्राकृतिक शक्तियाँ बढ़ती जाएँगी, उतनी ही आत्मिक शक्तियाँ न्यून होती चली जाएँगी। दूसरी ओर जब आत्मा ज्ञानस्वरूप और क्रियावान् परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ेगा तो उसके ज्ञान और क्रिया की शक्ति अधिक होती जाएगी, जैसे जितने अधिक समय तक दीपशलाका धूप में पड़ी रहेगी, उतनी ही उसके जलने की शक्ति तीव्र होती चली जाएगी।

भ्रातृवर्ग! अब इस प्रश्न का समाधान तो हो गया कि आत्मा में बल कहाँ से आता है और निर्बलता कहाँ से आती है। हमारे बहुत-से मित्र कहेंगे कि यह केवल कथनमात्र ही है, परन्तु यदि वे विचारपूर्वक लौकिक इतिहासों का अवलोकन करें तो उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि आत्मिक बल ईश्वर-भक्तों की ही सम्पत्ति है।

उदाहरण के रूप में पता तो लगाइए कि क्या कारण था कि राजा हरिश्चन्द्र इतनी आपत्तियों के उपस्थित होने पर भी अपने सत्य पर दृढ़ रहा? क्या कारण था कि महात्मा रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा पाते ही राज्य को तुच्छ समझकर त्याग दिया और वन को चले गये? क्या कारण था कि लक्ष्मण जी ने सब प्रकार के सुखों का परित्याग कर भाई के साथ वन को जाना स्वीकार किया? क्या कारण था कि सीताजी जैसी सुकुमारी रानी ने वनों में भ्रमण करना स्वीकार किया और राज्यादि के आनन्दों की कुछ भी इच्छा न की? क्या कारण था कि राजा मोरध्वज शरीर मध्य से चीरा जाए और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने शरीर को चिरवा दे? क्या कारण कि महात्मा भर्तृहरिजी ने अपने सारे राज्य को तुच्छ समझकर जङ्गल में जाना स्वीकार किया क्या कारण था कि गुरु तेगबहादुर ने यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया? क्या कारण कि गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लड़कों ने दीवार में चुने जाकर मृत्यु का वरण किया? क्या कारण था कि महात्मा पूर्णभक्त ने सहस्रों आपत्तियों को सहन किया, परन्तु उसका आत्मा पाप की ओर आकर्षित न हुआ? क्या कारण था कि बालक हकीकतराय ने बारह वर्ष की अवस्था में यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया, परन्तु धर्म को नहीं त्यागा? क्या कारण था कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने सारे भारतवर्ष का शत्रु बनना स्वीकार किया, ईंट और पत्थर खाना स्वीकार किया, परन्तु अधर्म को नहीं बढ़ने दिया और धर्म के विरुद्ध चलना महापाप समझा? आप विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह आत्मिक बल था जिसने इन महात्माओं को संसार के मुकाबले में विजयी बनाया।

प्रिय पाठकवृन्द ! क्या आपने कभी विचार किया कि वे कौन-से कारण थे जिन्होंने रानी पद्मिनी को प्रचण्ड अग्नि में भस्म होकर मरना स्वीकार किया-कराया, परन्तु यवन बादशाह की बेगम बनना स्वीकार नहीं किया? क्या कारण था जिसने राजा दाहर की रानी को चिता में जलकर मरने पर कटिबद्ध किया? वह कौन-सी शक्ति थी जिसने कृष्णकुमारी को जलती हुई चिता पर बिठा दिया? कहाँ तक गिनाएँ! इस भारतभूमि में तो असंख्यात दृष्टान्त दृष्टिगोचर होते हैं जिनके नाम इस संसार में नक्षत्रों के समान देदीप्यमान हैं। आप लोग इसका उत्तर यही देंगे कि इनमें धर्मभाव था जिसने इन सुकुमारी

क्रमशः पृ. ७.....

योग विज्ञान का महत्त्व और लाभ

-नीलकांत आर्य

योग एक व्यापक, गहन और गंभीर शब्द है जिसको अनेक महर्षियों-मुनियों, योगियों, संबुध संतों ने नानाविध तरीकों से परिभाषित करने की भरसक चेष्टा की है परंतु, जिसे अभी तक किसी एक परिभाषा में बाँधा नहीं जा सका है। महर्षि पाणिनि के धातुपाठ में योग शब्द के प्रतिपादक तीन धातु उपलब्ध हैं- 'युजिर योगे, युज समाधौ तथा युजू संयमने'' योग का सामान्य अर्थ 'समाधि' तथा 'जोड़ने वाला माना जाता है। कौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित ने समाधि का अर्थ चितवृत्ति का निरोध किया है समाधिश्चिप्रवृत्ति निरोधः।' महर्षि पंतजलि प्रणीत योददर्शन में योग अर्थ चित्तवृत्ति निरोध ही किया गया है- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । महर्षि याज्ञवल्क्य' जीवात्मा तथा परमात्मा'' के संगम (मिलन) को ही योग कहते हैं: 'संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनो।' गीता समत्व एवं कर्मों की कुशलता को ही योग कहती है समत्वं योग उच्यते। ''योगः कर्मसु कौशलम्।।'' महर्षि सायणाचार्य के मतानुसार 'अप्रायवस्तु की प्राप्ति ही योग हैं- अप्राप्तस्य प्राप्तिः योगः।' योगवाशिष्ठ में ''जीवात्मा-परमात्मा का मेल तथा भवसागर को पार करने की युक्ति को ही योग कहा है।'' विष्णुपुराण में वह अवस्था, जिसमें ब्रह्म का मेल हो, योग कही गई है।'' सर्वचिंता परित्यक्तो निश्चिंतो योग उच्यतेः समस्त चिंताओं को त्यागकर निश्चिंत हो जाने का नाम ही योग है। इस प्रकार, योग, समाधि (चित्तवृत्ति निरोध) और आत्मा परमात्मा के एक्य स्थापित को योग कहा गया है। जीवात्मा-परमात्मा मिलन हेतु अनेक साधन बताए गए हैं। ऐसी स्थिति में योग के अनेक प्रकार माने जाते हैं, जैसे ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग, नादयोग, ध्यानयोग, प्रेमयोग, मंत्रयोग, हठयोग, राजयोग, अनासक्तियोग इत्यादि। लेकिन भारतीय मनीषी के अनुसार योग की कुछ विधाएँ ही सर्वमान्य हैं वे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग हैं। योग एक पराभौतिकी (मेटाफिजिक्स) प्रक्रिया है। तब यह विचारणीय है कि योग की पराभौतिकी पद्धति कौन-सी है। इस संबंध में महर्षि पतंजलि की प्राचीन तथा प्रामाणिक पुस्तक योग दर्शन में योग के जिन प्रकारों का वर्णन मिलते हैं, उसे राजयोग कहा गया है। इस राजयोग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के आठ अंग व चरण है। विवेक विलोचन से अवलोकन किया जाए तो यह योग का संपूर्ण विज्ञान एक ही सूत्र में निबद्ध है। इन आठ अंगों का सांगोपांग क्रमबद्ध तथा सूत्रबद्ध पालन ही योग का पराभौतिक विज्ञान कहलाता है। ये आठ अंग परस्पर गहन संबंध रखते हैं। इनके क्रम को परिवर्तित कतई नहीं किया जा सकता। इन अष्टांगों का नियमित अभ्यास एक परावैज्ञानिक पद्धति है। प्रयोगों से आज यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अष्टांग योग का शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः यह कहा जा सकता है कि योग दर्शन पराविद्या का तथ्यात्मक उदवाचन और निरूपण करने वाला प्रायोगिक विज्ञान है। चराचर सृष्टि में जड़ चेतनात्मक तत्वों तथा परमचेतन तत्वों का जानना ही परातत्व ज्ञान विज्ञान है। इस तत्व ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति अथवा दैहिक, दैविक, भौतिक दुख की निवृत्ति होती है। योग विज्ञान भारतीय आर्ष मनीषा का श्रेष्ठतम अवदान है। यह सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्ववर्णिक प्राचीनतम पराविद्या है। इसमें वैश्विक मानव कल्याण का शीतल अमृत छलकता रहता है। इसके नियमित अभ्यास से अंतःकरण में सक्रियता आती रुधिर संचार तेज होता है तथा भेद दोष घटते हैं और कार्यशक्ति बढ़ती है। २१वीं सदी के योग महर्षि रामदेव जी महाराज के अनुसार अनुलोम-विलोम प्राणायाम से बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दस नाड़ियाँ परिशुद्ध हो जाती हैं। संपूर्ण नाडियों की शुद्धि होने से शरीर पूर्ण स्वस्थ, कांतिमय एवं बलिष्ठ बनता है। पाँच मिनट से प्रारंभ करके इस प्राणायाम को २०-२५ मिनट तक किया जा सकता है। पाँच मिनट तक इसका अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। इसके नियमित अभ्यास से संधिवात, आमवात, गठिया, कम्पवात, स्नायु- दुर्बलता आदि समस्त वातरोग, मूत्ररोग, धातुरोग, शुक्रक्षय, अम्लपित, शीतपित्त आदि समस्त पित्तरोग, सर्दी, जुकाम, पुराना नजला, साइनस, अस्थमा, खाँसी, रान्सिल आदि समस्त कफ रोग दूर होते हैं। त्रिदोष प्रशमन होता है। इसी प्रकार कपालभाति (प्राणायाम) से समस्त कफरोग, दमा, श्वास, एलजी, साइनस आदि रोग नष्ट हो जाते है' तथा हृदय, फेफड़ों एवं मस्तिष्क के समस्त रोग दूर होते हैं। इस प्राणायाम के करने से आमाशय, अग्न्याशय (पेन्क्रियाज) यकृत, प्लीहा, आंत्र, प्रोस्टेट एवं किडनी का आरोग्य विशेष रूप से बढ़ता है। तथा मोटापा, मधुमेह, गैस, कब्ज, अम्लपित्त, किडनी से संबंधित सभी रोग निश्चित रूप से दूर होते हैं। कब्ज जैसा खतरनाक रोग इस प्राणायाम के नियमित रूप से लगभग १०-१५ मिनट तक प्रतिदिन करने से मिट जाता है। मधुमेह बिना औषधि के नियमित किया जा सकता है।' योगाचार्य भगवानदेव के अनुसार मधुमेह के रोगी को मत्स्यासन, सुप्तवज्रासन, योगमुद्रासन, हलासन, सर्वांगासन, उतानपादासन और उच्चरक्त चाप के रोगी को योगमुद्रासन, सिद्धासन, शवासन, शक्ति संचालन क्रिया व नियमित करना चाहिए।'' इसका नियमित अभ्यास प्रत्येक रोगी को करना चाहिए। इसे देश-विदेश के वैज्ञानिक चिकित्सकों ने लाखों लोगों के रोगों पर प्रयोग परिक्षण व शोध करके पूर्ण रूप से स्वीकार किया है तथा पाया है कि यह असाध्य एवं जटिल रोगों में भी कारगर है। एक सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया में अमूमन दस करोड़. व्यक्ति मधुमेह रोग से ग्रस्त है। हमारे देश में लगभग ३ करोड़ व्यक्ति मधुमेह रोग से पीड़ित है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आकलन के अनुसार २०३५ तक भारत में १० करोड़. मधुमेह रोगी होंगे जिनकी संख्या विश्व में सर्वाधिक होगी। इसी प्रकार एक सर्वेक्षण से पता चला है कि सारी दुनिया में १०० करोड़ व्यक्ति उच्च रक्तचाप (हाइपरेंटेशन) से पीड़ित है। भारतवर्ष में १ करोड़, व्यक्ति उच्चरक्तचाप के रोगी हैं। दरअसल रक्तचाप प्रत्येक व्यक्ति में होता है, लेकिन हर व्यक्ति का रक्तचाप हर समय घटता-बढ़ता रहता है। जब रक्तचाप लगातार १४०/६० मि.मी. मर्करी से ऊपर बना रहता है, तो उस स्थिति को उच्च रक्तचाप कहते हैं। आज के हेतुवादी, भौतिकवादी युग के तनावपूर्ण वातावरण में अष्टांग योग ही एक मात्र ऐसी विद्या है जिसके नियमित अभ्यास से हर व्यक्ति अपनी जीवन नैया को सुचारू रूप से शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर इस भवसागर से पार ले जा सकता है। योगासन और प्राणायाम केवल ऋषियों-मुनियों तथा वानप्रस्थी व संन्यासियों के लिए ही नहीं है, बल्कि हर स्त्री, पुरुष, नवयुवक, नवयुवतियां इसका नियमित अभ्यास कर सकते हैं और इससे लाभ उठा सकते हैं। इससे शारीरिक, बौद्धिक, आत्मिक और आध्यात्मिक ऊर्ध्वमुखी शक्ति का विकास होता है। ऋग्वेद १/१८/७ स्पष्ट कहा है कि **''यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। सधीनां योगमिन्वति''** अर्थात् योग के बिना विद्वानों का कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता।' जो हो, यह एक वैज्ञानिक विधि है और वैज्ञानिकों ने भी इसके महत्त्व को स्वीकार किया है।

चलभाष-७२५०५०७६४६

आदिकाल से है योगों की परम्परा

-परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

अध्यात्म प्रवण भारतवर्ष के आर्य सनातन वैदिक धर्म तथा दर्शन में योग को सदा ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भारतीय आर्य धर्म-साधना एवं दर्शन में वेदांत के समान प्रतिष्ठा यदि किसी अन्य अध्यात्म विद्या को मिली है, तो वह सर्वतोभावेन योग ही है। वेदकाल से अद्यावधि अप्रतिहत प्रवहमान इस पुण्यभूमि भारत ने कई योगनिष्ठ ऋषि-महर्षियों, संबुद्ध- संतों तथा महान आत्माओं को उत्पन्न किया है, जिन्होंने अखिल मानवों के कल्याणार्थ समय-समय पर इस पवित्रतम योगविद्या पर भी क्षीराश्मि डाला है। भगवान ने स्वयं अपने अमृतपुत्रों के कल्याणार्थ यजुर्वेद ११/३ द्वारा इस परमपवित्र योगविद्या का उपदेश किया है-

युक्तवाय सविता देवान्त्स्वरर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्।।

इसी तरह ऋग्वेद १/५/३ में योग की गौरव- गरिमा प्रकाश डाला गया है। यह सर्वतः सत्य है कि भगवान के परमपद - निर्वाण को प्राप्त करना ही जीव का लक्ष्य है। अतः योग-साधना ही एकमात्र ऐसा सर्वतोभद्र प्रशस्त राजमार्ग है जिस पर चलकर जीवात्मा उस परमपद को प्राप्त कर सकता है। अतः महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन में इस अनुपम विद्या पर पुष्कल प्रकाश डाला है।

यद्यपि महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि **'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।'** और महाभारत १२/३४६/६५ में भी कहा गया है कि हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।' अर्थात् हिरण्यगर्भ ही योग के वक्ता हैं, इनसे पुरातन और कोई वक्ता नहीं है, तथापि इस समय उपलब्ध ग्रंथों में केवल महर्षि पतंजलि का योगसूत्र ही एकमात्र ऐसा प्रामाणिक शास्त्र है जिसमें विस्तार से इस परमपावन योगविद्या का वर्णन मिलता है। महर्षि पतंजलि ने कुल १६४ सूत्रों में ही इस पराविद्या का दिग्दर्शन कराया है। इन्होंने अपने योगसूत्र १/२ में स्पष्ट लिखा है- **योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः** ।' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरूद्ध हो जाना योग है। तब चित्त की वृत्तियों के निरूद्ध हो जाने पर क्या होता है ? इस शंका के समाधान में महर्षि पतंजलि कहते हैं-**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्!** (योगदर्शन १ / ३) अर्थात् चित्त की वृत्तियों के रूक जाने पर जीवात्मा अपने स्वरूप में ठहर जाता है। जब चित्त की वृत्तियाँ सम्यक् रूप से ठहर जाती हैं तब जीवन की सारी उलझनें और वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं और हमारी अंतरात्मा की सात्विक संचेतना मुस्करा उठती है तथा हमारे मन-प्राणों में नई चेतना स्पंदित होने लगती है। अतः ये हमारे कष्ट भरे जीवन के लिए अनोखे रसायन हैं।

योग भारतीय आर्ष मनीषा का श्रेष्ठतम विकास है। यह सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्ववर्णिक प्राचीनतम पराविद्या है। इसमें संप्रदायवाद का कलुष नहीं है, जातिवाद का उन्माद नहीं है और न ही सीमित संकीर्णता का छल-दंभ ही है। इसमें ऊर्ध्वमुखी उद्बोधन का पौरूष राग है, दिव्य प्रेरणा की भूयसीज्योति है, प्रस्तार प्रगति की आसमंतात् भवतीति की प्राणधारा है और भास्वर प्रगति के प्रज्ञान की दिशा है। यह अप्रतिहत लहराती सुरापगा की धवल धारा की तरह स्वच्छता, भव्यता और पवित्रता का आलोक स्तंभ है, प्रद्योत प्रगति का विमल वरदान है, जो हमें ऋत में आरोहण करने का दिव्य संदेश देता है। इसमें वैश्विक मानवकल्याण का अमृत छलकता है। इसकी सतत साधना से वासना के दलदल से मानवता का दिव्य सुगंधित सरसिज विकसित होता है। यह आत्मानुशासन की उदात्त भावनाओं को प्रदीप्तमान करता है। यह आरोग्यमय जीवन में आरोहण करने का सहज-सुगम स्यंदन है। इसने भारतीय साधना पद्धति के धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कृति और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रेरित-प्रभावित किया है। इसके सतत अभ्यास से निष्प्राण, रूग्ण जीवन तथा अवसाद ग्रसित मानवों को प्राणमय अमृत ऊर्जा का आलोक प्राप्त होता है। नियमित आसन मुद्रा प्राणायाम के योगाभ्यास से वाणी विनम्रता, व्यवहार में सरलता और विचारों में शुचिता आती है। यह व्यामोह, रोग-शोक कामोद्वेगों और डिप्रेशन की भौतिक ज्वाला के बीच पड़े हुए विश्व मानवों के परित्राण तथा अभ्युत्थान का एक मात्र सर्वोत्तम, समुज्जवल और सांद्रस्निग्ध सोपान है। यह साधक व्यक्ति को मनोविकारों, दुश्चिंताओं और दुःखों से बचाए रखता है।

त्रय - ताप अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिकता से अभिशापित-तापित मानव जीवन में आरोग्य का दुख और अशांति की भीषण ज्वाला में सुख और शाश्वत शांति का तथा अवसाद की कुहेलिका में नव उत्साह का दिव्यालोक प्रदान करने में योग का महार्घ महत्त्व है। जीवन का रोम-रोम इसकी सतत साधना से आनंद और उच्छल-उत्साह से थिरक उठता है। इसके अभाव में संपूर्ण जीवन गहन विषाद से विदग्ध हो उठता है। यह रोग, मानसिक दुख-द्वंद्व-संक्षोभ-विक्षोभ और भोग-विलास की भटकन में भटकते हुए अखिल मानवों को आत्मबोध तथा संयम निग्रहता का पाठ पढ़ाता है। इसके सतत ध्यानाभ्यास से साधक लौकिक और पारलौकिक अनेक कार्य सिद्ध करते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है कि इसके निदिध्यासन से मानवों की सारी उदासी, विषाद ओर सारा डिप्रेशन गायब हो जाता है। तभी तो देशी-विदेशी मनीषी साधकों तथा मनस्वी योगतत्त्व की गरिमा को स्वीकारते हुए २१ जून २०१५ को अंतराष्ट्रीय योगदिवस के रूप में घोषित किया है। भारत प्रधान मंत्री महाप्राज्ञ नरेंद्र मोदी ने कहा है- ''योग

क्रमशः पृ. ७.....

धर्म का सत्यस्वरूप वेदाचरण है एवं धर्म पालन का महत्व

संसार में धर्म एवं इसके लिये मत शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। यदि प्रश्न किया जाये कि संसार में कितने धर्म हैं तो इसका एक ही उत्तर मिलता है कि संसार में धर्म एक ही है तथा मत-मतान्तर अनेक हैं। संसार में यह पाया जाता है कि विज्ञान के सब नियम सब देशों और सब मनुष्यों के लिये एक समान होते हैं और सब मनुष्य देश, काल व परिथितियों से ऊपर उठकर उनका पालन करते है। इसी प्रकार से धर्म के सभी सत्य सिद्धान्त संसार के सब मनुष्यों के लिये समान रूप से जानने एवं पालन करने योग्य होते हैं। धर्म से विपरीत सिद्धान्तों को अधर्म कहा जाता है। मत व धर्म में अन्तर यह होता है कि धर्म तो ईश्वर द्वारा प्रवर्तित होता है परन्तु मत व पन्थ किसी मनुष्य या सामान्य मनुष्यों से किंचित विद्वान व्यक्ति, पुरुष व आचार्य द्वारा प्रवर्तित होता है। मत की अनेक बातें सत्य हो सकती हैं जो उनमें पूर्व प्रचलित वेद-धर्म व वेद-परम्पराओं से प्राप्त की गई होती हैं। उन मान्यताओं का उन-उन मतों की स्थापना व प्रचलन से पूर्व वेदों में विधान रहता ही है। उनमें से कुछ मान्यताओं एवं सिद्धान्तों को भी मत-पंथ के आचार्य अपने मत में स्थान देते हैं। इनसे इतर भी मतों के आचार्य अपनी विद्या व अविद्यायुक्त अनेक मान्यताओं को भी अपने मत में मिला कर मत व पंथ को चलाते हैं। संसार के मतों पर दृष्टि डाले तो सभी इसी कोटि में आते हैं। वैदिक सिद्धान्त है कि मनुष्य का आत्मा अल्प ज्ञान रखने वाला होता है।

मनुष्य के सभी कार्यों में भी न्यूनता होती है। अतः मनुष्यों द्वारा प्रवर्तित मतों में भी गुण व दोष का होना स्वाभाविक है। यही कारण था कि मतों के विधान के विपरीत पृथिवी को गोल व सूर्य की परिक्रमा करने वाली बताने पर यूरोप के एक वैज्ञानिक की प्रताड़ना की गई थी व उसे मृत्यु दण्ड दिया गया था।

संसार में वेद-मत से इतर कोई मत ईश्वर द्वारा प्रवर्तित व प्रादूर्भूत नहीं है। केवल वेदमत ही ऐसा मत है जिसे परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न कर संसार में प्रवर्तित किया था। वेदों का आविर्भाव ईश्वर से हुआ है। वेद ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया को ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए परमयोगी वेदर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में विस्तार से समझाया है। ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वज्ञ है। वह अनादि, अमर, अविनाशी तथा अनन्त है। वह मनुष्य की जीवात्मा के बाहर एवं भीतर भी विद्यमान रहता है। अतः वह जीवों को उनकी आत्मा के भीतर प्रेरणा द्वारा ज्ञान दे सकता है व दिया करता है। इसी प्रक्रिया से परमात्मा ने सृष्टि की आदि में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा को उत्पन्न कर उन्हें वेदों का ज्ञान दिया था। उन ऋषियों को ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त होने का ज्ञान था जिसका उन्होंने सृष्टि के आरम्भ काल से ही प्रचार किया जो ऋषि दयानन्द तक अपने सत्यस्वरूप में पहुंचा व प्राप्त हुआ था। उसी ईश्वर प्रदत्त वेदज्ञान को मनुष्यों के उपयोगी एवं आचरणीय होने के कारण धर्म कहा जाता है। धर्म का अर्थ यही है कि जिसे मनुष्य धारण करें। वेद निहित धारण करने योग्य गुणों को धारण करने से ही वेदों को धर्म ग्रन्थ तथा वेदों द्वारा प्रचलित मान्यताओं, सिद्धान्तों व जीवन शैली को ही वैदिक धर्म कहा जाता है। वर्तमान समय में जब विद्वान वेदों की परीक्षा करते हैं तो वेद पूर्णतः अविद्या व अज्ञान से रहित और मनुष्यों के सम्पूर्ण विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। वेदाध्ययन एवं वेदाचरण करने से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त हो सकता है। यह सिद्धान्त वेद व ऋषियों की ही देन है। वेदेतर मत-मतान्तरों के आचार्यों को वैदिक सिद्धान्तों का पूर्ण वा पर्याप्त ज्ञान नहीं था यदि होता तो नया मत प्रवर्तित करने की आवश्यकता ही नहीं थी और यदि करते भी तो वह सर्वथा वेदानुकूल होता। इस कारण वेदमत के सभी प्रमुख सिद्धान्त मत-मतान्त्ररों के ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। इन सिद्धान्तों का विकारयुक्तस्वरूप ही कुछ कुछ पाया जाता है। ऐसा होना मत-मतान्तरों में न्यूनता का होना है। इस प्रकार अवैदिक मत अपने अनुयायियों को वेदानुकूल स्तुति, प्रार्थना, उपासना, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, शाकाहार, परोपकार आदि समस्त सद्कर्मों से कुछ व अधिक वंचित कर उन्हें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लाभों से दूर रखने सहित परजन्मों में वेदधर्म के पालन से होने वाले कर्मफल आदि के लाभों से भी उन्हें वंचित करते हैं।

वेदों में मनुष्यों के लिये धारण करने योग्य सभी सत्यगुणों का वर्णन है जिससे मनुष्य की आध्यात्मिक एवं सांसारिक उन्नति होती है। आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक होता है कि मनुष्य को ईश्वर, आत्मा व सृष्टि के सत्यस्वरूप का यथोचित ज्ञान प्राप्त हो। यह केवल वेद व ऋषियों के वेदानुकूल ग्रन्थों के अध्ययन से ही सम्भव है। इस कारण संसार में सभी मनुष्यों का धर्म एक ही है और वह वैदिक धर्म ही है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में सभी मतों की परीक्षा कर बताया है कि सभी मतों में सत्यासत्य मिश्रित है, उनमें विद्या के साथ अविद्या भी विद्यमान है। अतः मनुष्यकृत कोई भी मत-पन्थ का ग्रन्थ व कार्य पूरी तरह से निर्दोष व पूर्ण विद्या से युक्त नहीं है। पूर्ण केवल परमात्मा है और उनका ज्ञान एवं उनके कार्य भी पूर्ण है। अतः धर्म का पालन ईश्वर से प्राप्त ज्ञान व वैदिक सिद्धान्तों के आचरण से ही हो सकता है। धर्म की सबसे छोटी व सारगर्भित परिभाषा यह है कि सत्य का आचरण करना ही मनुष्य का धर्म है। पूर्ण सत्य वेदों के अध्ययन से ही प्राप्त होता है।

सभी ऋषियों ने एक मत से वेदों को सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ स्वीकार किया है। प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ने वेदों के आधार पर ही मनुस्मृति, उपनिषद, दर्शन आदि अनेक ग्रन्थों की रचनायें की थी। इन सभी ग्रन्थों के अध्ययन एवं पालन से मनुष्य जीवन को सफल जीवन बनाने में सहायता मिलती है। वेदों में सभी मनुष्यों व उनके सभी कर्तव्यों का विधान मिलता है।

ऐसा निर्दोष ज्ञान संसार के किसी ग्रन्थ व आचार्य से उपलब्ध नहीं होता। अतः वेद व वेदानुकूल ऋषि ग्रन्थों का भ्रान्ति रहित ज्ञान ही धर्म कहा जाता है। यही कारण था कि सृष्टिकाल के आरम्भ से वेदों के उत्पन्न होने पर इसके बाद वर्तमान समय तक वैदिक धर्म प्रचलित है। कुछ अज्ञानी लोगों ने वेद व वैदिक संस्कृति को नष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु वह इस कार्य में सफल नहीं हुए। संसार में किसी भी मनुष्य व उनके समूहों में यह शक्ति नहीं है कि वह ईश्वर द्वारा प्रवर्तित सत्य वा सत्यनियमों को नष्ट कर सकें। ऐसा अनिष्ट कार्य कभी सफल होने वाला नहीं है। जब तक सृष्टि है तब तक वेद, सत्य सिद्धान्त व सत्य नियम आदि संसार में विद्यमान रहेंगे। यदि वेदभक्तों के आलस्य व प्रमाद के कारण कभी वेद अर्थात् वेदज्ञान विलुप्त हो भी गया तो विद्या व आध्यात्मिक ज्ञान के लुप्त होने से यह संसार सज्जन मनुष्यों के सुख-शान्ति पूर्वक रहने योग्य नहीं रहेगा।

वेद धर्म ही सत्य धर्म है। वेद धर्म का पालन करने से मनुष्यों को अनेक लाभ होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि वेदानुयायी को ईश्वर का सहाय व आशीर्वाद प्राप्त होता है। मनुष्य की शत्रुओं से, अज्ञान से, रोगों से तथा दुष्ट विचारों आदि से रक्षा होती है। धर्म पालन व ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना से उपासक मनुष्य का ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। वह स्वस्थ रहते हुए बलशाली होते हैं। वेदानुयायी की आयु का नाश व न्यूनता न होकर पूर्ण आयु की प्राप्ति होती है। वेद मार्ग पर चलने वाला मनुष्य सद्कर्मों को करने से सुख व आनन्द का अनुभव करता है। उसको परजन्म में भी श्रेष्ठ देव व मनुष्य योनि में जन्म प्राप्त होकर सुखों की प्राप्ति होती है। ऋषि दयानन्द ने अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर यह भी बताया है कि वेदानुयायी निश्चय ही ईश्वर का उपासक होता है। उपासना से उसके आत्मिक बल में वृद्धि होती है। सभी उपासकों को परमात्मा से आत्मिक बल की प्राप्ति होती है। इस बल के प्राप्त होने पर मनुष्य मृत्यु के समान वृहद दुःख के प्राप्त होने पर भी घबराता नहीं है अपितु ईश्वर की स्तुति, भक्ति व उपासना करते हुए अपने प्राणों का त्याग करता है। यही मनुष्य की सबसे श्रेष्ठ गति होती है। संसार के इतिहास में अंकित है कि जब जब महापुरुष व आचार्य संसार से विदा हुए तो वह सन्तुष्ट व प्रसन्न नहीं थे। उनको मृत्यु का दुःख व अभिनिवेश क्लेश सता रहा था। वह मरना नहीं चाहते थे। इसके विपरीत ऋषि दयानन्द व अन्य ऋषियों की मृत्यु पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि उन्हें मृत्यु से पूर्व मृत्यु का ज्ञान हो गया था और उन्होंने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों का त्याग किया। अतः वेदज्ञान के सत्यस्वरूप को आत्मसात कर उसके अनुसार ही आचरण व व्यवहार करना मनुष्य का धर्म है जिससे उसे जीवन में सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं और मृत्यु के बाद पुनर्जन्म होने पर इस जन्म से भी अधिक सुख वा सुख की परिस्थितियां प्राप्त होती हैं। वेद व वैदिक धर्म ही वरणीय एवं आचरणीय है। सभी वैदिक धर्मियों का कर्तव्य है कि वह ज्ञान व विवेक से युक्त होकर वैदिक धर्म का प्रचार करें।

संसार से अविद्या को हटायें और लोगों में वैदिक मान्यताओं का प्रचार कर सबको सत्यमार्ग में प्रवृत्त करें जिससे सारा संसार दुःखों से मुक्त होकर सुख व सद्गुणों को प्राप्त हो सके।

-मनमोहन कुमार आर्य,
देहरादून।
फोन-०९४१२९८५१२१

घर की बात

साभार- प्रो.राजेन्द्र जिज्ञासु

दिल्ली में एक बार गांधी मैदान में पौराणिकों को ईसाईयों से शास्त्रार्थ करना पड़ गया । वैसे पौराणिक हिन्दू आर्यसमाज से ही अधिक टकराते हैं तथा उसकी समाज सुधार नीतियों की वजह से जी भर के उसे गालियां भी देते है ...किन्तु अन्य विधर्मियों से तार्किक रूप से लोहा लेने की इन्हें कभी हिम्मत ही नहीं हुयी । इस दृष्टि से यह शास्त्रार्थ एक अपवाद था । जब ढोल गले में ही पड़ गया तो पौराणिकों को बजाना पड़ गया । ईसाईयों की और से पादरी गुलाम मसीह ने शास्त्रार्थ किया । पौराणिकों की ओर से पण्डित गिरधर शर्मा जी थे । श्री गुलाम मसिह नेत्र ज्योति विहीन थे । आर्यसमाज नया बाँस दिल्ली के एक पूर्व प्रधान स्व. ओम प्रकाश जी कपड़े वाले इस शास्त्रार्थ के एक श्रोता थे । उनके मुख से मैंने इस शास्त्रार्थ से जुडी निम्न घटना अनेक बार सुनी। पादरी गुलाम मसीह ने सनातन धर्म पर वार करते हुए यजुर्वेद २३-१९ के पौराणिक भाष्यकारों के अश्लील अर्थ सुनाया तो सनातनी श्रोताओ को भी कानो मे उँगलियाँ देनी पड़ी और श्री पं गिरधर शर्मा जी से कोई जबाब नही देते बना तो उन्होंने स्टेज के पीछे की ओर मुड़कर कहा ''अरे भाई कोई आर्यसमाजी भाई यहां है क्या? ''

वहां एक साथ कई आर्यों ने कहा कहिये क्या कहना है ??

पं गिरधर शर्मा जी भी जानते थे की चावड़ी बाजार व नया बाँस के आर्य समाज मन्दिर पास में ही है । पण्डित जी ने कहा भाई स्वामी दयानंद जी का वेद भाष्य अविलम्ब लाकर दें । झटपट आर्य लोग ऋषि का वेद भाष्य ले कर आये । पं जी ने मन्त्र का अर्थ ऋषि के भाष्य से सुनाते हुए पादरी को ललकारा ।

हिन्दू मात्र ने यह अर्थ सुनकर करतल ध्वनि की ।

अब पादरी जी वेद मन्त्रों के यह अर्थ सनातनी पौराणिक विद्वान के मुख से सुनकर दंग रह गए ।

पादरी ने पंडित जी को अपना वेद भाष्य दिखाने को कहा । पादरी जी पढ़ तो सकते नही थे । अपने लोगो से पूछा यह वेद भाष्य किसका है ??

उन्होंने कहा स्वामी दयानंद जी सरस्वती जी का है । तब पादरी जी ने पुनः गिरधर शर्मा जी को ललकारते हुए कहा यह भाष्य आपका नहीं है । यह आर्यसमाज का है । आप अपना सायण व महीधर का भाष्य लाना फिर बात करना ।

पं गिरधर शर्मा विद्वान तो थे ही तपाक से बोले ''स्वामी दयानंद भी तो हमारे ही थे । वे तुम्हारे क्या लगते थे । यह हमारे घर की बात है अपने किसी भी ग्रन्थ का प्रमाण देने का अधिकार हमसे आप छीन नहीं सकते ।

तब पादरी गुलाम ने कहा स्वामी जी के भाष्य पर हम आप से शास्त्रार्थ क्यों करे ? इस पर शास्त्रार्थ करना होगा तो हम आर्यसमाज से ही करेंगे या फिर पं व्यासदेव व रामचन्द्र देहलवी जी से सीधी बात करेंगे ।

'' पं गिरधर शर्मा वृ उनके समर्थक अपनी बात पर अड़े रहे और शास्त्रार्थ वहीं समाप्त हो गया । सनातनी पिटने से बच गये । ऋषि के वेदभाष्य से लाज बच गई।

प्राणोपासना

-श्री तपेन्द्र आर्य

शरीर व मन की शुद्धि के लिए भोजन का सात्त्विक होना आवश्यक है अतः अभ्यासी को दृढ़ निश्चय करके भोजन की शुद्धि सुनिश्चित करनी है। भोजन तत्त्व सात्त्विक हों तथा सात्त्विकता के साथ अर्जित किये गये हों, पाप-पूर्वक नहीं। अन्न से मन बनता है। जैसा अन्न होगा, वैसा ही मन होगा। जैसा मन होगा वैसा ही चिन्तन होगा ।जैसा चिन्तन होगा, वैसे ही कर्म होंगे। जैसे कर्म होंगे वैसा ही शुभ-अशुभ फल प्राप्त होगा और वैसे ही शुभ-अशुभ संस्कार बनेंगे। संस्कारों से पुनः उसी प्रकार के कर्म होंगे और यह क्रम चलता रहेगा, फलतः जीवन-मृत्यु का क्रम भी चलता रहेगा। योगदर्शन के ५वें सूत्र के व्यास भाष्य में बताया है,

तथा जातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते। संस्कारैश्च वृत्तय इति। एवं वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते।

इसी जन्म-मृत्यु के क्रम को तोड़कर मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है।

चित्त की वृत्तियों को संसार से रोक देना, चित्त को एकाग्र कर लेना, निरुद्ध कर लेना योग कहा गया है। इसी से आत्मा की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा होती है व इसी से परमेश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इसलिए अभ्यासी को चाहिये कि वर्तमान में अपनी वृत्तियों को सांसारिकता से रोके, निरन्तर रोकने का अभ्यास करे, ज्ञान-वैराग्य प्राप्त करे, सत्य से मन को शुद्ध करे, ज्ञान से बुद्धि को शुद्ध करे जिससे वर्तमान कर्मों से बने संस्कार पुनः सांसारिक वृत्ति न उठायें। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य अभ्यासी को करना है, वह है पूर्व वासनाओं, संस्कारों का क्षय।

सांसारिकता का भी कर्म होता है उसका कारण अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। क्लेश को विपर्यय, मिथ्याज्ञान भी कहा जाता है। क्लेशों के कारण ही काम, लोभ, मोह व क्रोध वृत्तियाँ-मल- अशुद्धि उत्पन्न होती हैं। जिससे जीवात्मा पाप-पुण्य कर्मों को करता है।

क्लेशावबद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति...

अविद्या आदि क्लेशों से युक्त कर्माशय कर्मफल को दिलवाने वाला होता है। योग दर्शन के २/१२ सूत्र के व्यास भाष्य में, ''तत्र पुण्यापुण्य कर्माशयः कामलोभमोह-क्रोधप्रभवः'' के अनुसार जो पाप-पुण्य रूप कर्माशय है वह काम, लोभ, मोह व क्रोध से उत्पन्न होता है और ये चित्त के मल अविद्या से उत्पन्न होते हैं। आचार्य राजवीर जी शास्त्री के शब्दों में, ''अविद्या के संस्कारों के कारण संयोग होने से पुरुष भोगासक्त हो जाता है और विद्या-यथार्थज्ञान के द्वारा संस्कारों को फलोन्मुख करने में असमर्थ करके अपवर्ग का अधिकारी बन जाता है।''

प्राणायाम का फल वर्णन करने वाले योगदर्शन के सूत्र **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** का भावार्थ करते हुए महर्षि दयानन्द जी महाराज ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं, ''(ततः) इस प्रकार प्राणायामपूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का आवरण ढौंपने वाला जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञान का प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ता जाता है।'' महर्षि व्यास लिखते हैं,

प्राणायामभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म

अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने से विवेकज्ञान का आवरण रूप जो कर्म है वह नष्ट हो जाता है। सत्यार्थप्रकाश में महर्षि लिखते हैं, ''जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है जब तक कि मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बढ़ता जाता है।'' व्यास भाष्य में आया है,

तपो न परं प्राणायामात्ततोविशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।

प्राणायाम से अधिक कोई तप नहीं है उससे मलों की विशुद्धि तथा ज्ञान का प्रकाश होता है।

योग के बहिरंग साधनों-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार- इनका एक ही उद्देश्य है कि अभ्यासी की धारणा सिद्ध हो जावे। क्योंकि जहाँ धारणा लगेगी वहीं ध्यान लगेगा तथा वहीं समाधि लगेगी तथा तीनों के फल संयम की भी उपलब्धि होगी। समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिए धारणा का अभ्यास होना आवश्यक है। किसी एक स्थान पर अल्पकाल के लिए मन एकाग्र होना धारणा है, धारणा की निरन्तरता बने रहना ध्यान है तथा ध्यान में धाता ध्यान ध्येय की एकरूपता हो जाना समाधि है। प्राणायाम के फल सम्बन्धि सूत्र "धारणासु च योग्यता मनसः'' के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास करने से अभ्यासी के मन में धारणा की योग्यता आती है। 'प्राणायाम करने से धारणा करने में मन की योग्यता- क्षमता हो जाती है। इसलिए योग के धारणादि अंगों के अनुष्ठान करने में प्राणायाम मुख्य आधार है।'' (आ. राजवीर शास्त्री) भोजवृत्ति अनुसार धारणा **वक्ष्यमाणलक्षणास्तासु प्राणायामैः क्षीणदोष मनो यत्र यत्र धार्यते तत्र तत्र स्थिरीभवति न विक्षेपं भजते।**

प्राणायामों से दोषों के नष्ट होने पर धारणा में मन जहाँ-जहाँ लगाया जाता है, वहाँ-वहाँ एकाग्र होता है, विक्षेप को प्राप्त नहीं होता।

मलों-अशुद्धि का नाश होकर ज्ञान का प्रकाश बढ़ना तथा धारणा में मन की योग्यता होना-प्राणायाम का फल बताया गया है। अतः अभ्यासी को निरन्तरता से, सत्कारपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास विधिपूर्वक करना चाहिये तथ क्रमशः करना चाहिये। इससे अल्पकाल में ही अभ्यासी को इच्छित लाभ स्वयं ही दिखाई देगा। लाभ दिखने से योग में श्रद्धा बढ़ेगी जिससे आगे का मार्ग भी सरल होगा।

आसन की सिद्धि के लिए जब अनन्त समापत्ति का अभ्यास किया जाता है तो प्रारम्भ में उससे पूर्व शरीर की स्थिरता पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे अनन्त समापत्ति में सुगमता नहीं हो पाती। अतः समुचित आसन में बैठकर प्रयत्नशैथिल्य का अभ्यास किया जाना पहली जरूरत है। इसमें एक अभ्यास यह भी किया जा सकता है कि आसन में बैठकर पैर से लेकर सिरपर्यन्त ऊपर की ओर मन को चलावें। फिर दूसरे पैर से सिर तक मन को लावें, फिर पूरे शरीर में नीचे से ऊपर की ओर मन को विचरण करावें। इससे शरीर के अंग शिथिल हो जावेंगे तथा शिथिलता होने से स्थिर भी होंगे। यह कुछ-कुछ वैसी स्थिति होगी जैसी शवासन में हो जाती है। इस समय शिथिलता व स्थिरता होने से नींद सी आ सकती है, यह नहीं होने देना, यह तमोगुण का लक्षण है। सात्त्विक स्थिति- ज्ञान की स्थिति बनाये रखनी है तथा इस स्थिति के तुरन्त बाद अनन्त समापत्ति में मन को सामने की दिशा में अनन्त तक फैला देना है-प्रेषित करना है। तदुपरान्त सन्ध्या के मनसा परिक्रमा अनुसार दिशाओं में मन को एकाग्र करना है। एक दिशा का अभ्यास होने पर दूसरी दिशा का अभ्यास प्रारम्भ करना उचित है। ओ३म् का जप प्राणायाम के समय किया जाना है, आसन में मन को अनन्त तक प्रेषित करने का अभ्यास ही करना है।

प्राणायाम से मन की धारणा में योग्यता होती है, अतः प्राणायाम करते समय हृदयस्थल पर मन को टिकाकर रखना है तथा ओ३म् का जप करना है क्योंकि हृदय में ही आत्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन होता है। प्राणायाम करते समय यदि मन सांसारिक विषयों का चिन्तन करता रहेगा तो सांसारिक विषयों में एकाग्रता होगी-धारणा होगी और मन को सांसारिक विषयों में ले जाना तथा सांसारिक विषयों पर धारणा करना तो अभ्यासी को अभीष्ट है नहीं। अभ्यासी को इस बिन्दु पर विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है।

प्राणायाम का अभ्यास करते-करते प्राणों की ऊर्ध्व गति होने पर अभ्यासी की ऐसी स्थिति आ जावेगी कि मन को थोड़ा एकाग्र करते ही प्राणों की ऊर्ध्वगति का आभास- अनुभव होने लगेगा। इस समय प्राण प्राणनाड़ियों के अवरोधों को दूर कर रहे होते हैं अतः अभ्यासियों को मात्रा-भेद से शरीर में अधिक गर्मी या सिर में पीड़ा आदि हो सकते हैं। अभ्यासी बैचेनी अनुभव कर सकता है। अभ्यासी कई बार घबराकर डाक्टरी जाँच आदि कराता है, परन्तु उसमें सब पैरामीटर नार्मल आते हैं। अभ्यासी औषध भी ले लेता है। ऐसे में अभ्यासी को धैर्य रखना चाहिये क्योंकि यह बहुत उच्च स्थिति है तथा विरले अभ्यासियों को ही प्राप्त होती है। स्वामी सत्यबोध जी महाराज अनुसार यह उपद्रव कुछ काल रहकर अपने आप शान्त हो जाते हैं। इसमें औषधि लिया जाना न तो लाभदायक होता, न उसकी आवश्यकता होती। हाँ, अभ्यासी को अपने लक्षणों को सत्यता से परखना चाहिये। यदि प्राणोत्थान के लक्षण न हों, अन्य रोग के लक्षण हों और उपचार न लिया गया तो उचित नहीं। यदि प्राणोत्थान के लक्षण हैं और उपचार लिया जावे तो भी उचित नहीं।

एक सावधानी अभ्यासी को और रखनी चाहिये बाह्यवृत्ति प्राणायाम करते समय गर्दन को आगे की ओर मोड़कर बन्ध नहीं लगाना चाहिये। गर्दन से ऊपर सिर तक प्राणोत्थान की प्रक्रिया अलग है जो धड़ में उत्थान के बाद करणीय है तथा उससे सिर में पीड़ा आदि की अवधि कम हो जाती है। यदि ऐसी स्थिति आ गयी हो, सिर में पीड़ा हो तो प्राणों को सिर के ऊपर अनन्त तक प्रेषित करने का अभ्यास करना चाहिये अर्थात् प्राणों को सिर के उच्च भाग से बाहर निकालने का प्रयास करना चाहिये। इससे यह उपद्रव शीघ्र ही समाप्त हो जावेंगे। कुछ अभ्यासी घबराहट या किसी की सलाह से पैर के अंगूठे आदि शरीर के नीचे के स्थान में -नीचे की ओर एकाग्रता करने लगते हैं, यह बिल्कुल उचित नहीं है। क्योंकि प्राणोत्थान विरले अभ्यासियों को होता है, यह प्राणायाम की उच्च स्थिति है, उसे वापस निम्नप्रवाही बना देना अभ्यासी के लिए हानिप्रद है। यह तो वैसा ही है जैसा नदी के एक हजार मीटर के पाट को तैर लिया, आगे सौ मीटर बचा था फिर घबराकर वापस तैरना शुरू कर दिया। इस घबराहट में तैराक पुनः एक हजार मीटर तैरता है और वापस उसी किनारे आकर खड़ा हो जाता है जहाँ तैरने से पहले खड़ा था। बल्कि उससे भी १००-२०० मीटर निम्न प्रवाह की ओर स्थिति कर लेता है।

अभ्यासीगण! आप भाग्यवाले हैं, आपने साधना का मार्ग चुना है। आपने सत्यकाम की तरह सांसारिक सुखों के त्याग का मार्ग चुना है। आपने प्रेय मार्ग की वास्तविकता को समझकर श्रेय मार्ग का ग्रहण किया है। शास्त्रों अनुसार यही सही रास्ता है, यही रास्ता अपवर्ग तक ले जाता है, इसी से दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है, इसी से आनन्द की प्राप्ति होती है क्योंकि **नात्रदर्शनं मोक्षकारणम्** (२-२०) सांसारिक विषयों का दर्शन मोक्ष का कारण नहीं। ननु बुद्धिनिवृत्तिमेव मोक्षः। बुद्धि की सांसारिक कार्यों से निवृत्ति मोक्ष है। सांसारिक विषय लुभावने अवश्य हैं, परन्तु प्रतिपक्षभावना आदि से इन्हें दूर हटाया जा सकता है, तनु किया जा सकता है। प्रतिपक्षभावनापहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति (२.४)। वैराग्य से विषयस्रोत को रोकें तथा विवेक दर्शन के अभ्यास से विवेक स्रोत को खोलें। अभ्यास और वैराग्य दोनों के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करें।

तत्र वैराग्येण विषयस्त्रोतः खिलीक्रियते। विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेकस्त्रोत उद्घाट्यते। इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः। बृहदारण्यक उपनिषद् कहती है, यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।

क्रमशः पृ. ७.....

पृष्ठ ३ का शेष......

सतियों को प्रसन्नतापूर्वक इन आपत्तियों के सहने पर सन्नद्ध कर दिया। यह धर्म क्या वस्तु है? केवल ईश्वरोपासना! बस, आप समझ गये होंगे। संसार में धर्म और अधर्म या पाप और पुण्य जो दो शब्द हैं, इनका आशय केवल ईश्वरोपासना और प्रकृति की उपासना है। ईश्वर-उपासना धर्म है जिससे आत्मिक बल मिलता और वह ऐसे उन्नति के कार्य करता है जिनसे संसार में सुखों की प्राप्ति होती है। दूसरे, ईश्वरोपासना से ईश्वरीय शक्ति अर्थात् वैदिक ज्ञान की प्राप्ति होकर जीव की ज्ञानशक्ति बढ़ जाती है। संसार में जितने योगी हुए हैं, जिन्होंने अपने आत्मा को प्रकृति से अलग करके ज्ञान की ओर लगाया है, संसार में वे सब ज्ञानी और विद्वान् कहलाये और उनका नाम और काम आज तक संसार में विख्यात है, परन्तु जितने प्रकृति के उपासक हुए, वे आत्मिक बल से रहित, दास होकर चले गये। वे जीवन में मूर्खता और दुःखों से घिरे रहे और मरने के पश्चात् भी कष्ट के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिला और आज उन्हें कोई जानता तक भी नहीं।

प्रियवरो! आत्मा एक राजा है जिसका देश यह शरीर है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि इत्यादि इसके कर्मचारी हैं। यदि राजा बलवान् होता है तो अपने कर्मचारियों पर शासन करता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। राजा के बलवान् होने पर उसके कर्मचारी उसके दास होकर प्रत्येक प्रकार का सुख देते हैं, परन्तु जिस समय राजा निर्बल हो जाता है उस समय कर्मचारी उसको दबा लेते हैं और वह प्रत्येक की चापलूसी करता है और उनके लिए भोजन जुटाता है। यद्यपि यह कार्य इन कर्मचारियों का था कि अपना भोजन प्राप्त करके अर्थात् अपने विषयों को भोगते हुए राजा के लिए भोजन अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराते, परन्तु आत्मा को निर्बल देखकर ये ऐसे आलसी और अहंकारी हो जाते हैं कि राजा को स्वयं इनके भोजन की चिन्ता लगी रहती है। उसकी सारी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा बिक जाती ही। वह अपने आपको राजा के स्थान में दास अनुभव करने लगता है। अब उसका कर्त्तव्य यह हो जाता है कि साईस की भाँति घोड़ों के पालन-पोषण में लगा रहे। उसे अपने वास्तविक लक्ष्य का तनिक-सा भी ध्यान नहीं रहता कि कहाँ जाना है। आत्मिक प्रबलता की दशा में वह जिन कार्यों को तुच्छ समझता था, अब आत्मिक निर्बलता की दशा में उन्हें आवश्यक कार्य समझता है। प्रबलता की दशा में जिन पदार्थों का ज्ञान उसे सुगमता से हो जाता था, वही अब उसके विचार में जटिल प्रतीत होता है।

भ्रातृवर्ग! यह तो आप जानते हैं कि जिस जाति का नायक-सरदार योग्य नहीं होता, वह जाति सदा असफल रहती है और जिस देश का राजा अयोग्य है, उस देश की प्रजा सदा कष्ट सहती है। राजा का कार्य राजा से होता है, दास से नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रबल आत्मा के कार्य निर्बल आत्मा से नहीं हो सकते। संसार में भी देखा जाता है कि जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ उसके वश में न हों तो उसका कुटुम्ब भी उसके वश में नहीं रहता, और जो अपने कुटुम्ब पर शासन न कर सके वह अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता, और जो अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता वह अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता और जो अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता वह प्रान्त पर शासन नहीं कर सकता, और जो प्रान्त पर प्रशासन के योग्य न हो वह देश पर शासन नहीं कर सकता, और जो एक देश पर भी शासन नहीं कर सकता वह संसार पर शासन किस प्रकार कर सकता है? यहाँ से पता लगता है कि संसार में सफलता की सबसे बड़ी सीढ़ी आत्मा का इन्द्रियों और मन पर शासन है और इन्द्रियों पर मन के शासन के लिए आत्मा को बहुत भारी शक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि ये इन्द्रियाँ संसार के पदार्थों को मन के द्वारा आत्मा के सम्मुख प्रस्तुत करके धोखा देना चाहती हैं, परन्तु प्रबल आत्मा, जिसका ज्ञानगुण परमात्मा की प्रबल शक्ति से सहायता पाकर उन्नति कर चुका है, जिसे प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है, वह इन इन्द्रियों और मन के धोखे में नहीं आ सकता। जो इन्द्रियों और मन को वश में करने योग्य बल आत्मा में रखता है, वह कृतकार्य हो सकता है।

पृष्ठ ६ का शेष......

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति।

जब हृदय में बैठी हुई कामनाएं छूट जाती हैं, तब यह मर्त्य मनुष्य अमृत हो जाता है। यहीं पर ब्रह्म का आनन्द ले लेता है।

अभ्यासीगण! कामनाओं को छोड़ने से ही साधना में उन्नति होगी, सभी शास्त्र ऐसा ही उपदेश दे रहे हैं।

विवेकचूड़ामणि में आया है-

अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः।

अत्यन्त वैराग्यवान् मनुष्य को समाधि लाभ होता है।

महाभारतकार कहते हैं-

असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप इति मे मतिः।

जिसका मन वश में नहीं है उसके लिए योग असंभव है।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः

अतः अपने मन को एकाग्र करके, चित्त व इन्द्रियों को वश में करके आत्मशुद्धि के लिए अविलम्ब योगाभ्यास के लिए आसन पर डट जाओ। विषय-वासनायें विषयों को भोगने से कम नहीं होतीं बल्कि और अधिक बढ़ती हैं। ये धन-सम्पत्तियाँ भी शाश्वत नहीं हैं, नित्य नहीं हैं, सदा पास रहने वाली नहीं हैं, साथ जाने वाली नहीं हैं।

विभवो नैव शाश्वतः।

आचार्य धर्मवीर जी को वैराग्यशतक का यह श्लोक बहुत प्रिय था। वे साधना के अतिरिक्त सभी कार्यों को वणिक् वृत्ति कहकर यह श्लोक सुनाया करते थे-

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ।।

आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य इस श्लोक का भावार्थ करते हुए लिखते हैं, ''वेदों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य बड़े-बड़े शास्त्रों को केवल पढ़ते-पढ़ाते रहने से तथा विभिन्न कर्मकाण्डों को करते रहने से स्वर्ग में एक अच्छा घर व भोग्य साधन मिल जाने के अतिरिक्त और क्या विशेष लाभ है? मनुष्य का मुख्य कार्य तो ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करने के लिए हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके समाधि लगाना ही है, जो संसार के समस्त दुःखों के कारण (=अविद्या) को जला देने के लिए अग्नि का काम करता है और सब कार्य तो बनियों के व्यापार के समान हैं।'' अभ्यासीगण! श्रद्धा से साधना में जुट जाओ, क्योंकि समय कम है तथा मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य वा न कृतम्।।

पृष्ठ ४ का शेष......

तनाव और जटिल बीमारियों से लड़ने में हमारी मदद करता है।'' वस्तुतः योग शरीर के समस्त रोगों को दूरकर मस्तिष्क को तनाव मुक्त करता है। प्राच्य - पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सकों ने भी लाखों लोगों के रोगों पर शोध करके पूर्ण रूप से स्वीकारा है कि योग असाध्य तथा जटिल रोगों में भी कारगर है।' वस्तुतः इसके नियमित अभ्यास से हमारे अंतःकरण में नवजीवन की प्राणदायिनी शक्ति प्रणोदित होती है। यह हमारे मुरझाते हृदय और मन-प्राणों को चेतनावान करता है। यह हमारी चंचल चित्तवृत्तियों का समेकन तथा परिष्कार करता है जो हमें भौतिक आनंद ही नहीं, बल्कि ब्रह्मानंद-सहोदर आनंद-उल्लास की उपलब्धि कराता है इससे हमारे कुम्हलाए अंतःकरण में नई चेतना-नय स्फूर्ति, नई ताजगी, नई संजीवनी और नई जीवंतता लौट आती है इससे हमारा जीवन रूपांतरित होता है।

योग पराभौतिकी (मेटाफिजिक्स) की एक मौलिक परंपरा है। इससे साधक के अंतःकरण में सर्वधर्मसद्भाव, सर्वधर्मसमभाव तथा सर्वधर्मसहभाव आदि की भावोर्जा-संवर्द्धित पोषित होता है। इसमें समन्वय का संपोषक तत्त्व निहित है यह जोड़ने का काम करता है। योग शब्द 'युज्' धातु से उत्पन्न हुआ है इसका अर्थ है- 'जुड़ना, जोड़ना या संबद्ध होना।' योग जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ता है। यह व्यक्ति के अंतःकरण में दिव्य चेतना तथा चारुता का विकास करता है तथा मानव को मानव से जोड़ता है। इससे ही विश्वमानवबोध तथा एकात्ममानववाद का संस्थापन संभव है। क्योंकि यह जन्म-जाति और लिंगभेद पर आधारित भेदभाव की पारंपरिक रीति-रिवाज को मिटाकर अखिल मानवों के लिए अमंदशांति, सहअस्तित्व और सार्वभौमिक सहिष्णुता की गहन भावनाओं को विराट फलक पर उपस्थापित करता है। इसका संबंध मनुष्य की विराट आंतरिक दिव्य ऊर्जा को स्पंदित ट्रांसफार्मेशन, समेकन और नियमन करने से है। इसका अंतरंग संबंध मनुष्य के अंतःकरण निहित दिव्य चिन्मय शक्ति को रूपांतरित और नव उन्मेषित करने से है। विराट फलक पर यह अंतर्गुहा में निहित ज्योतिर्मय सर्वोच्च चेतनाशक्ति को स्पंदित करने का मूल अधिष्ठान है। इसके नियमित अभ्यास से हमारे मरणासन्न प्राणों में नवप्राणशक्ति का दिव्य संचार होता है। भगवान ने स्वयं अपने अमृत पुत्रों को इस परमपवित्र योगविद्या का उपदेश किया है। संसार की सर्वप्रथम कृति ऋग्वेद १/१८/७ में स्पष्ट कहा गया है-

यस्माद्दृते न सिध्यति यज्ञोविपश्चितश्चन स धीनां योगमिन्वति।।

अर्थात् योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। पुनः योग की गरिमा के संबंध में ऋग्वेद १/३०/७ में इंद्र का आह्वान करते हुए कहा गया है-

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे सखाय इंद्रमूतये।।

अर्थात् प्रत्येक योग में प्रत्येक संकट में प्रत्येक संग्राम में हम सखा इंद्र का आह्वान करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि नियमित योगाभ्यास से मानव अपने जीवन में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक और आध्यात्मिक चेतना को उन्मेषित कर सुषमामय सुख शांति और मधुमय सर्वतोभद्र समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। हमारे योग ऋषियों ने अपने भीतर सर्वव्यापी चैतन्य के महासागर में करोड़ों वर्ष पहले योग ध्यान समाधि के द्वारा इसी 'गॉड पार्टिकल' (सूक्ष्म हिग्सबोसोनकण) का साक्षात्कार किया था। आज भी हम ध्यान एवं समाधि में आरोहणकर अतिमानस चेतन मंडल में सत्य ऋत का साक्षात्कार कर सकते हैं। वेद में इस सर्वोच्च 'हिरण्मय' अस्तित्व को ऋत- चित् कहा गया है। इसका अपना महत्त्व अक्षुण्ण है।

मोबाइल नं०-६१६२२०८००५

आचार्य देवराज शास्त्री स्मृति ग्रंथ' का प्रकाशन

विश्व प्रसिद्ध आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा के संचालक, गुरुकुल में मुख्य अधिष्ठाता, मंत्री और आचार्य के रूप में अपनी आजीवन सेवाएं देकर देश समाज तथा विश्व को हजारों संस्कृत के विद्वान, प्रोफेसर, शिक्षक, राष्ट्रभक्त तैयार कर समर्पित करने वाले, वेद, व्याकरण, दर्शन एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान, मनीषी, महान राष्ट्रभक्त, स्वर्गीय आचार्य देवराज शास्त्री जी की प्रथम पुण्यतिथि पर पूज्य आचार्य जी की स्मृति में एक स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

आपसे विनम्र अनुरोध है कि महान शिक्षाविद्, राष्ट्रभक्त, तपस्वी, स्वर्गीय आचार्य देवराज शास्त्री जी की स्मृति में प्रकाशित होने वाले आचार्य देवराज शास्त्री स्मृति ग्रंथ के लिए अपना सन्देश, लेख, कविता, आचार्य जी के साथ की फोटो अथवा अन्य स्मृति सामग्री दिनांक १० जुलाई २०२३ तक ईमेल तथा व्हाट्सएप के माध्यम से भिजवाने की कृपा करें। जिसे स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित कर हम स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करेंगे।

आपके संदेश प्राप्ति की प्रतीक्षा में

भवदीय

मुख्य संपादकः सुधीर कुलश्रेष्ठ
संपादकः आचार्य जयप्रकाश शास्त्री, राष्ट्रीय कवि बलराम सरस
प्रकाशकः श्रीमती शारदा देवी, प्रदीप शास्त्री, मेधाव्रत देवराज शास्त्री
(स्व. आचार्य देवराज शास्त्री स्मृति ग्रंथ)
संपर्क सूत्रः व्हाट्सएप : 9810897878
Email : devrajshastrismritigranth@gmail.com

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८९१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
....
....
....

आर्य वीर एवं वीरांगनाओं के योग व चरित्र निर्माण शिविर का भव्य उद्घाटन

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. द्वारा प्रायोजित तथा जिला आर्य प्रतिनिधि सभा कौशाम्बी द्वारा आयोजित प्रान्तीय शिविर आर्यवीर एवं आर्य वीरांगनाओं के योग व चरित्र निर्माण शिविर का भव्य उद्घाटन

दिनांक २१ जून, २०२३ को स्थान माता प्रसाद इंटर कालेज टिकरा मवई, मंझनपुर, कौशाम्बी में मुख्य अतिथि के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा द्वारा किया गया। प्रातःकाल योग दिवस मनाया गया।

दिनांक २७ जून, २०२३ तक चलने वाले शिविर में बालक व बालिकाओं के शरीरिक, आत्मिक, बौद्धिक व सामाजिक उन्नति का विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा जो राष्ट्र निर्माण में सहायक व पथ प्रदर्शक होगा।

कार्यक्रम में विशेष अतिथि के रूप में डॉ. रवि किशोर त्रिवेदी, आचार्य रवि शास्त्री अधिष्ठाता आर्य वीर दल उ.प्र., आचार्य धर्मवीर सिंह आर्य, अध्यक्ष राष्ट्रीय आर्यवीर दल, सुश्री सुमेधा आर्या, मुख्य शिक्षिका राष्ट्रीय आर्य विरांगना दल, श्री अजय श्रीवास्तव सहायक कोषाध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र., श्री दिलीप श्रीवास्तव प्रबन्धक गुरूकुल वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, श्री कमलेश कुमार प्रधानाचार्य, माता प्रसाद कान्वेन्ट स्कूल, आचार्य अशर्फीलाल शास्त्री, सर्वश्री नवीन श्रीवास्तव, नवीन पाण्डेय, अरविन्द आकाश, अनुभव, सुश्री प्रियंका द्विवेदी आदि उपस्थित थे।

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा कासगंज द्वारा जनपदीय आर्य महा सम्मेलन का आयोजन

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा कासगंज द्वारा दिनांक २१ जून, २०२३ को जनपदीय आर्य महा सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन के मुख्य अतिथि आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी थे।

सम्मेलन में डॉ. राम प्रकाश वर्मा, आचार्य लोकेन्द्र देव आर्य, सर्वश्री दिनेश चन्द्र बिड़ला, लाल बहादुर, धरमदेव, यशोमित्र आर्य, पूर्णेन्द्र वर्मा आदि उपस्थित थे।

सम्मेलन में जनपद कासगंज की आर्य समाजों के प्रतिनिधियों व पदाधिकारीगणों ने भाग लिया।

आर्य समाज दादरी, मेरठ में आर्य महासम्मेलन का भव्य समापन

आर्य समाज, दादरी जनपद मेरठ का आर्य महासम्मेलन दिनांक १६ १७ व १८ जून २०२३ को भव्य समारोह पूर्वक संपन्न हुआ।

सम्मेलन को वैदिक विद्वान आचार्य महावीर मुमुक्ष जी, श्री अतुल प्रधान जी-विधायक, ठाकुर विक्रम सिंह जी, स्वामी अखिलानंद जी-पूंठ, श्री प्रदीप कसाना-जिला पंचायत सदस्य, गाजियाबाद, श्री कंवर पाल शास्त्री, श्री प्रदीप शास्त्री, श्री जगमाल सिंह, श्री वीरेश भाटी, श्री जगत सिंह नागर, श्री नवाब सिंह भाटी, श्री ज्ञानेंद्र सिंह आर्य आदि ने संबोधित किया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री विजेंद्र कुमार आर्य, श्री भगवत प्रसाद व सलेक चंद्र आर्य ने की तथा संचालन श्री सत्येंद्र कुमार ने किया। संयोजक-अजय आर्य, एडवोकेट थे। इस अवसर पर शिवानी मोतला, वंशिका मोतला, मयंक मोतला, लवीश, शौर्य, अनंत आर्य, मनीष अयान, अंविस, आदित्य, मयंक मोतला, आर्यन नवतेज, अंबिका, स्वाति नागर, अनुष्का, प्रतीक्षा, वैभव, काकुल, अनमोल आदि छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया गया।

समारोह को सफल बनाने में सर्व श्री महेश चंद्र आर्य, जगबीर, देवेंद्र, संजीव डुडौला, डॉ. मनोज मांगेराम आर्य आदि का विशेष सहयोग रहा।

आर्य समाज शंकरपुर पिटरहाई का वार्षिकोत्सव हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न

आर्य समाज ग्राम शंकरपुर पिटरहाई जिला शाहजहाँपुर का १०१वाँ वार्षिकोत्सव दिनांक १७, १८ व १६ जून, २०२३ को हर्षोल्लास पूर्वक मनाया गया।

समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. वीर विक्रम सिंह विधायक, श्री विनय आर्य जी-मंत्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली व आमंत्रित विद्वत्गण आचार्य विनोद शास्त्री-बुलंन्दशहर, सुश्री वेद प्रिया आर्या-बुलन्दशहर, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, कासगंज, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, पंडित उदयराज आर्य-सहसवान, कविरत्न नरसिंह आर्य, पंडित पूर्ण प्रकाश आर्य, कवि कैलाश चन्द्र आर्य, पंडित चमन देवी आर्य (सभी बदायूँ से), आ० राजवीर देव शास्त्री-शाजहाँपुर, पं० भूदेव शास्त्री आदि थे।

उत्सव में प्रातः ७:३० से १०:०० बजे तक यज्ञ व उपदेश मध्यान्ह २:०० बजे से ५:३० बजे तक भजन व प्रवचन, रात्रि ७:३० से १०:३० बजे तक भजन व प्रवचन का कार्यक्रम हुआ। जिसमें सैकड़ों धर्म प्रेमी नर-नारी उपस्थित हुए।

शोक समाचार

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ के प्रधान श्री नवनीत निगम जी का दिनांक ०६ जून, २०२३ को असाध्य बीमारी के कारण अचानक निधन हो गया। स्व. नवनीत निगम के देहान्त से सम्पूर्ण आर्य जगत स्तब्ध व आवाक हैं। आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता व ऋषि भक्त के रूप में स्व. निगम जी सदैव स्मरणीय रहेंगे। उनके निधन से आर्य समाज की अपूर्णीय क्षति हुई है।

स्व. नवनीत निगम जी का अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से तमाम सहृदयों, परिजनों व आर्य बन्धुओं की उपस्थित में किया गया।

दिनांक १२ जून, २०२३ को स्व. नवनीत निगम की स्मृति में शांति यज्ञ व श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। जिसमें शोक संतप्त परिजनों व जनपद के समस्त आर्य समाजों के पदाधिकारियों व गणमान्य लोगों ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व समस्त पदाधिकारियों ने स्व. नवनीत निगम की मृत्यु पर शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा की सद्गति व शोकाकुल परिवार को धैर्य प्रदान करने की ईश्वर से प्रार्थना की है।

आर्य मित्र परिवार इस असहनीय दुःख में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

स्वामी—आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक—पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5—मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है—सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।